प्रवचन नं. ९० गाथा ३१ दिनाङ्क २४-०९-१९७८ रविवार
भाद्र कृष्ण ८, वीर निर्वाण संवत् २५०४

(समयसार) ३१ वीं गाथा चलती है। क्या कहते हैं ? कि जो कोई प्राणी, यह द्रव्येन्द्रिय, जो यह जड़; भावेन्द्रिय जो अन्दर खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलाती है और उसका विषय बाह्य पदार्थ-सबको यहाँ इन्द्रिय कहा गया है। भगवान आत्मा, इन्द्रिय के विषय अथवा इन्द्रिय के साथ संकर-संयोग सम्बन्ध, 'मैं एक हूँ' — यह संकर-संयोग सम्बन्ध, वह मिथ्यात्व है। आहाहा!

श्रोता : शरीर के साथ एकपना हो, वह मिथ्यात्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीरपना, एकपना वह भी भावेन्द्रिय है। एक समय की क्षयोपशमदशा के साथ एकता, वह मिथ्यात्व है। सूक्ष्म बात है बापू! यहाँ तो तीनों को ज्ञेय बनाया है। अपने भगवान ज्ञायकस्वरूप के साथ शरीर परिणाम को प्राप्त द्रव्येन्द्रियाँ, वह परज्ञेय है; वैसे अन्दर भावेन्द्रिय जो ज्ञान में क्षयोपशम अवस्था वर्तमान विषय को — एक-एक (विषय) को जानती है और अपने ज्ञान में खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है — ऐसी भावेन्द्रियाँ भी पर हैं और इन्द्रिय का विषय — स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव, गुरु और शास्त्र — सब इन्द्रिय का विषय है तो वह भी इन्द्रिय है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म भाई! इसमें शरीरपरिणाम को प्राप्त इन्द्रियाँ, वह आ गया है। **निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता से...** आहाहा! यह मैं द्रव्येन्द्रिय की पर्याय मैं नहीं, मुझमें नहीं, मैं उसमें नहीं — ऐसे इस जड़ शरीर के परिणाम को प्राप्त इन्द्रियों (को), भेद-निर्मल भेदाभ्यास के बल से, आहाहा! भिन्न करने के ज्ञान के बल द्वारा... आहाहा! **प्राप्त अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म....** अन्तरंग में प्रगट वस्तु भगवान अतिसूक्ष्म-अतिसूक्ष्म; एक समय की पर्याय से भी भिन्न... आहाहा! **अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से....** अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव का आश्रय लेकर, उसके अवलम्बन के बल से, आहाहा! **सर्वथा अपने से अलग किया;....** यह द्रव्येन्द्रियाँ जीतीं — ऐसा कहने में आता है।

शरीरपरिणाम को — पर्याय को प्राप्त, यह जड़ को अपना स्वरूप से भिन्न — ऐसा

प्रवीणता का भेद अभ्यास से अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वरूप भगवान के अवलम्बन के बल से द्रव्य इन्द्रियों को भिन्न कर दिया, आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सूक्ष्म बात है प्रभू! यह बात तो हो गयी — एक बात तो हो गयी।

अब दूसरी — **भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयों में....** भावेन्द्रियाँ जो पाँच हैं — श्रोत, चक्षु आदि उघाड़ अन्दर हो वह; जड़ नहीं, अन्दर विकास है — ज्ञान का विकास है। एक समय में जो खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलाती है — ऐसे **भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयों में व्यापारभाव से जो विषयों को खण्ड-खण्ड ग्रहण करती हैं....** एक-एक खण्ड-खण्ड विषय को ग्रहण करती है। उसका अर्थ कि **(ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप बतलाती हैं)....** आहाहा! खण्ड-खण्ड ज्ञान अपना स्वरूप नहीं है। आहाहा!

श्रोता : अखण्डज्ञान स्वरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म बात भाई!

एक तो द्रव्येन्द्रिय है, यह सिद्ध किया। शरीर परिणाम को प्राप्त द्रव्य इन्द्रिय है, यह सिद्ध किया और भावेन्द्रिय है, एक-एक विषय को जानने की खण्ड-खण्ड ज्ञान के जानने का विषय है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उससे भी भिन्न... आहाहा! **विषयों को खण्ड-खण्ड ग्रहण करती हैं (ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप बतलाती हैं)....** भावेन्द्रियाँ **ऐसी भावेन्द्रियों....** आहाहा! बात क्रमशः कहते हैं, होता है सब एक समय में; समझाने में क्रम पड़ता है, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, फिर विषय। यहाँ कहते हैं, जो ज्ञान की पर्याय वर्तमान खण्ड-खण्ड अथवा अपने-अपने विषय में व्यापार करनेवाली जो खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है, वह परज्ञेय है; वह अपना स्वज्ञेय नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। भाषा तो सादी है परन्तु वस्तु तो (जो है, वह है।) आहाहा!

ऐसी भावेन्द्रियों को,.... कैसी? कि जो अपनी पर्याय में खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है — ऐसी भावेन्द्रियाँ। आहाहा! वह भी ज्ञायकभाव से भिन्न चीज है। आहाहा! अपना भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव आनन्दघन प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा, आहाहा! उससे यह भावेन्द्रिय भिन्न है। भावेन्द्रिय, ज्ञायक का परज्ञेय है; स्वज्ञेय ज्ञायक। आहाहा! ऐसी बातें! स्वज्ञेय ज्ञायक, परन्तु भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है, वह परज्ञेय। परज्ञेय

अपने ज्ञायकभाव से भिन्न है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञान हुआ और तीन काल-तीन लोक एक समय में जानने में आये, उनकी वाणी — दिव्यध्वनि निकली, वह यह दिव्यध्वनि है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा, वह द्रव्येन्द्रिय से तो भिन्न, संयोग-सम्बन्ध से रहित परन्तु भावेन्द्रिय, वह भी संयोग-सम्बन्ध है। आहाहा! खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है — ऐसी इन्द्रियाँ, वह भी संयोग-सम्बन्ध है; स्वभाव-सम्बन्ध नहीं। सुमेरुमलजी! ऐसा है भगवान! ऐसा जो भगवान आत्मा... वह खण्ड-खण्ड ज्ञान.... शरीर तो अब एक ओर रह गया। आहाहा! परन्तु खण्ड-खण्ड ज्ञान, पर्याय में जो जानने में आता है, वह भी ज्ञायक भगवान आत्मा से भिन्न चीज है, वह तो ज्ञायक को परज्ञेय है। आहाहा!

इसको कैसे जीतना? और कैसे जीतना कहा जाता है? आहाहा! आहाहा! **प्रतीति में आती हुई....** देखो? अब अखण्ड ज्ञान का लेना है न, इसलिए प्रतीति ली। खण्ड-खण्ड ज्ञान के सामने अखण्ड ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु, आहाहा! उसमें तो शरीरपरिणाम को प्राप्त, उससे अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव का अवलम्बन से लिया था। आहाहा! यहाँ खण्ड-खण्ड ज्ञान की पर्याय जो जानती है, आहाहा! उसको, अन्दर में प्रतीति में आनेवाला भगवान आत्मा... आहाहा! **अखण्ड एक चैतन्यशक्ति....** वे खण्ड-खण्ड अनेक थी। सामने भगवान आत्मा आहाहा! अखण्ड एक **चैतन्यशक्ति....** आहाहा! **अखण्ड एक चैतन्यशक्ति....** चैतन्यस्वभाव! सूक्ष्म बात है प्रभु! गाथा ऐसी आयी है ठीक, सुमेरुमलजी आये हैं और गाथा बड़ी अच्छी आयी है, भाग्यशाली है। यह ऐसी चीज है, बापू! आहाहा!

अन्तर में खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलाती है — ऐसी इन्द्रियाँ भाव; है तो ज्ञान की पर्याय, हों! परन्तु वह भी ज्ञायक का भिन्न परज्ञेयरूप से गिनने में आयी है। आहाहा! क्योंकि अखण्ड एक चैतन्यशक्ति जो अन्दर त्रिकाल है, प्रभु! आहाहा! जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं। आहाहा! **प्रतीति में आती हुई....** कौन आती हुई? **अखण्ड एक चैतन्यशक्ति....** आहाहा! ज्ञायकशक्ति, ज्ञायकशक्ति, चैतन्यशक्ति, ध्रुवशक्ति। जैसे, पानी का पूर ऐसे चलता है, वैसे चैतन्यशक्ति ऐसे ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... समझ

में आया ? यह चैतन्य का नूर का पूर का ध्रुव, आहाहा ! अब, ऐसी बातें हैं। साधारण लोगों को पकड़ में नहीं आये इसलिए.... आहाहा !

यह शरीरपरिणाम प्राप्त तो एक ओर रहा, परन्तु अपनी पर्याय में जो ज्ञान का खण्ड-खण्ड दिखता है, आहाहा ! वह भी वास्तव में तो स्वज्ञेय ज्ञायक की अपेक्षा से तो वह परज्ञेय है और उस परज्ञेय की स्वज्ञेय में नास्ति है। आहाहा ! प्रभु ! तेरा मार्ग तो देखो भाई ! आहाहा ! बालचन्दजी ! बुद्धि फैलाना पड़े ऐसा है, भाई ! आहाहा ! जो खण्ड-खण्ड ज्ञान की पर्याय है, वह निश्चय से—परमार्थ से ज्ञायकस्वरूप भगवान जो प्रतीति में आनेवाला, अखण्ड एक चैतन्यस्वभाव, उससे वह भिन्न चीज है; भिन्न है तो उसे भेद करना। आहाहा ! भिन्न है तो भिन्न करके अतिसूक्ष्म का अवलम्बन लेना — ऐसी बात, बापू ! सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा !

उस शरीरपरिणाम को प्राप्त इन्द्रियाँ जड़, वह सिद्ध किया। नहीं है — ऐसा नहीं है, और भावेन्द्रिय नहीं है — ऐसा नहीं है। आहाहा ! वह खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है — ऐसी चीज है, परन्तु भगवान आत्मा उससे भिन्न है। आहाहा ! भाषा तो सादी है, बालचन्दजी ! भाव तो भगवान... यह तेरी चीज भगवान ! कौन है तेरा ? आहाहा ! अब राग और पुण्य-पाप के विकल्प की बात तो कहाँ रह गयी ! परन्तु यहाँ तो ज्ञान की पर्याय में वर्तमान में जो क्षयोपशम अंश प्रगट है, आहाहा ! वह भावेन्द्रिय वास्तव में तो अपने ज्ञायकभाव से भिन्न है तो उस **भावेन्द्रियों को, प्रतीति में आती हुई....** अन्तर भगवान **अखण्ड एक चैतन्यशक्ति के द्वारा....** आहाहा ! **सर्वथा अपने से भिन्न जाना....** आहाहा ! अकेले मन्त्र हैं, भेदज्ञान के मन्त्र हैं। रतनलालजी ! ऐसा है बापू ! आहाहा !

आहाहा ! गजब बात करते हैं न ! अपनी ज्ञान की पर्याय भी ज्ञायक में परज्ञेयरूप है। आहाहा ! इस कारण... समझ में आया ? क्योंकि एक समय की खण्ड-खण्ड है न ? भगवान तो अखण्ड अनन्त आनन्द... खण्ड है — ऐसा सिद्ध भी किया। आहाहा ! क्या शैली ! द्रव्येन्द्रिय है —ऐसा सिद्ध किया, अस्ति है; सर्वथा आत्मा एक ही है — ऐसा नहीं। आहाहा ! और भावेन्द्रिय है; आत्मा अकेला आत्मा एक ही है और खण्ड-खण्ड ज्ञान-भावेन्द्रिय नहीं है — ऐसा नहीं है। आहाहा !

व्यवहारनय का विषय सिद्ध करते हैं। आहाहा! इस एक समय की पर्याय से भी भिन्न भगवान। कैसा? प्रतीति में आनेवाला - विश्वास में आनेवाला - भरोसे में आनेवाला, अखण्ड एक चैतन्यशक्ति। समझ में आया? आहाहा! यह प्रभु! तेरी बात कोई अलग है। मूल बात रही नहीं, बाहर की धमाल — यह व्रत करो और तप करो... प्रभु! उसमें आत्मा नहीं। आहाहा! यह व्रत और तप का विकल्प है, वह तो राग है। उसमें आत्मा तो नहीं और आत्मा में वह नहीं परन्तु यहाँ तो खण्ड-खण्ड ज्ञान की पर्याय, जो राग आया, उसे जानती है, ज्ञान की पर्याय; वह खण्ड-खण्ड ज्ञान, उससे भी प्रभु अन्दर भिन्न है।

श्रोता : सर्वथा भिन्न है या कथंचित्।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा भिन्न। हमारे सेठ कहते हैं, कथंचित नहीं? आहाहा! ऐसी बात है भगवान! अरे! मिलना मुश्किल। सेठ स्वयं कहता है, अभी ऐसा स्पष्टीकरण नहीं मिलता। अरे भगवान! यह तो मार्ग भाई! आहा! यह खण्ड-खण्ड ज्ञान की जो पर्याय है, अपनी हों! क्षयोपशम। आहाहा!

शरीर को प्राप्त इन्द्रियाँ, वह तो जड़ — पर की जड़ थी। आहाहा! यहाँ ज्ञान की पर्याय का वर्तमान क्षयोपशम का अंश जो खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाये, आहाहा! प्रभु! वह तेरी चीज नहीं है। वह तुझमें नहीं है, तू उसमें नहीं है। आहाहा! तब क्या है? मैं तो प्रतीति में आती हुई अखण्ड एक चैतन्यशक्ति, चैतन्यस्वभाव स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... अखण्ड एकरूप चैतन्यस्वभाव के द्वारा, अखण्ड एक चैतन्यस्वभाव के द्वारा **सर्वथा अपने से भिन्न जाना....** आहाहा! भावेन्द्रिय का क्षयोपशम जो ज्ञान की पर्याय, उसको सर्वथा अपने से भिन्न जाना। आहाहा! कहो, समझ में आता है या नहीं? आहाहा!

अन्दर तीन लोक का नाथ अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु, आहाहा! उसके अवलम्बन द्वारा खण्ड-खण्ड ज्ञान से भिन्न कर, आहाहा! सर्वथा अपने से — अपने से अर्थात्? ज्ञायक जो प्रतीति में आनेवाला अखण्ड एक चैतन्यस्वभाव है, उसके द्वारा अपने से सर्वथा भिन्न जाना। आहाहा! चैतन्यज्योत ध्रुव-ध्रुव प्रवाह... पानी का पूर ऐसे चलता है, यह तो चैतन्य के नूर का पूर ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... समझ में आया। आहाहा! ऐसा है भगवान! क्या कहें? आहा! कहो शशिभाई!

अन्दर भगवान हैं न बापू! आहाहा! देह-देवालय में भगवान विराजमान है। वह भगवान खण्ड-खण्ड ज्ञान से भी भिन्न है। आहाहा! राग से भिन्न है, शरीर से भिन्न है; खण्ड-खण्ड ज्ञान से भिन्न है।

अखण्ड एक चैतन्यस्वभाव के आश्रय के द्वारा उसको (भावेन्द्रियों को) पृथक् किया, सर्वथा पृथक् किया। कथंचित् पृथक् किया और कथंचित् एक — ऐसा नहीं। भगवान का मार्ग तो अनेकान्त है न? कथंचित् पृथक् और कथंचित् एक — ऐसा है ही नहीं। आहाहा! **यह भावेन्द्रियों का जीतना हुआ।....** यह जीतना हुआ। आँखें बन्द कर दे और आँख फोड़ डाले, वह इन्द्रियों का जीतना — यह है नहीं। आहाहा! परन्तु वह एक समय की खण्ड-खण्ड दशा उसको — प्रतीति में आनेवाला अखण्ड एक चैतन्यस्वभाव के द्वारा खण्ड-खण्ड ज्ञान की पर्याय को भिन्न जाना। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? दो बोल हुए। दो बोल हुए न? द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

अब, **ग्राह्यग्राहक लक्षणवाले....** क्या कहते हैं? ग्राह्य अर्थात् ज्ञेय, जानने योग्य जो ज्ञेय, और ग्राहक — जाननेवाला ज्ञायक। ग्राह्यग्राहक — ग्राह्य-ज्ञात होने योग्य जो परपदार्थ - ज्ञेय, जाननेवाला — ग्राहक आत्मा। ग्राह्यग्राहक शब्द लिया है न? नहीं तो है तो ज्ञेयज्ञायक, परन्तु क्यों लिया कि अनादि से, आहाहा! यह परज्ञेय-ग्राह्य जो जाननेयोग्य है, वह मेरा है — ऐसा माना है। आहाहा! अरे! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, शरीर, वह तो पर है परन्तु यहाँ तो देव, गुरु और शास्त्र जो परज्ञेय है, आहाहा! वह जाननेयोग्य और आत्मा जाननेवाला, इसके अतिरिक्त वे देव-गुरु-शास्त्र मेरे हैं और मैं उनका, यह परज्ञेय के साथ एकताबुद्धि है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात बापू! आहाहा! ग्राह्य, ग्रहण करनेयोग्य; ग्राह्य अर्थात् ग्रहण योग्य। दूसरी भाषा में कहें तो ज्ञात होनेयोग्य परपदार्थ, ज्ञात होनेयोग्य और ग्राहक (अर्थात्) जाननेवाला भगवान (आत्मा) वह ग्राह्यग्राहक, ज्ञेय-ज्ञायक लक्षणवाले **सम्बन्ध की निकटता के कारण....** आहाहा! 'निकट' वहाँ सर्वविशुद्ध (अधिकार में) आता है न? आहाहा! यह देव, गुरु और शास्त्र, मन्दिर और प्रतिमा, यह सब परज्ञेय है। आहा! परन्तु ज्ञायक जाननेवाला और ज्ञेय पर, उनकी अत्यन्त निकटता के कारण, मानो वह जानने में आया, वह मैं हूँ, परज्ञेय है वह मैं हूँ, आहाहा! देव से मुझमें लाभ

हुआ, गुरु से मुझमें लाभ हुआ कि यह मुझे पूर्ण करना। आहाहा! समझ में आया? मन्दिर हो, भगवान तीर्थंकर आदि हो तो उसको भी छोड़कर जंगल में चले जाते हैं। आहाहा! यहाँ क्या कहना है? — यह परज्ञेय है और आत्मा ज्ञायक। वह परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। इसके अतिरिक्त आगे बढ़कर पर से मुझे लाभ होगा, आहाहा! यह भ्रम है।

ग्राह्यग्राहक लक्षणवाले.... यह लक्षण, सम्बन्ध, संकर, संयोग, इसकी **निकटता के कारण.... मानो कि अपने में संवेदन के साथ** अपने ज्ञान में उसका ज्ञान इस तरफ (आत्मा में) आ गया। उसके कारण उसका ज्ञान मुझमें आ गया — ऐसा अज्ञानी को निकटता से भास होता है। यह शास्त्रज्ञान कान में पड़ा तो मेरी पर्याय में शास्त्रज्ञान से ज्ञान हुआ — ऐसी एकता मानता है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसी बात है। भगवान की वाणी, वह ग्राह्य है-जाननेयोग्य है बस, परज्ञेयरूप से (जाननेयोग्य है)। भगवान भी परज्ञेयरूप से ग्राह्य-जाननेयोग्य है। इसके अतिरिक्त अति निकट सम्बन्ध और संयोग की निकटता के कारण उससे मुझमें लाभ हुआ, यह भ्रम है। ऐसी बातें! बहुत कठिन काम। आहाहा! देव, गुरु और शास्त्र उड़ जाते हैं (निषिद्ध हो जाते हैं)। वे तो पर हैं न! आहाहा! बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। आहाहा! देव, गुरु और शास्त्र, वे परज्ञेय — ज्ञान में निकटता से जानने में आते हैं; इस कारण ऐसा लगे कि उनसे मुझमें ज्ञान हुआ — वाणी सुनने से मुझमें ज्ञान हुआ, भगवान को देखने से मुझको भगवान का ज्ञान हुआ — यह ज्ञेयज्ञायक की अति निकटता से भ्रम उत्पन्न होता है। ऐसी बातें हैं बापू! बालचन्दजी! वहाँ कहीं सरदारशहर में मिले ऐसा नहीं है वहाँ। आहाहा! अमृत बरसता है भगवान! आहाहा!

ग्राह्यग्राहक लक्षणवाले.... आहाहा! यह ग्राह्यग्राहक लक्षण है, सम्बन्धरहित वह चीज नहीं है। पर के साथ तो ग्राह्यग्राहक लक्षण, आहाहा! अति **निकटता के कारण जो अपने संवेदन (अनुभव) के साथ परस्पर एक जैसी हुई दिखायी देती हैं....** आहाहा! शास्त्र के शब्द कान में पड़े तो उससे मुझे ज्ञान हुआ — ऐसी एकता अज्ञानी को भासित होती है। अद्‌भुत काम भाई! यह तो कठिन काम! परिचय न हो, सत्‌समागम (नहीं हो तो) बहुत कठिन काम है, भाई! ऐसा कहे कि स्वलक्ष्य से शास्त्र पढ़ना...

श्रोता : स्वलक्ष्य से ही ज्ञान के लक्ष्य से या पर के लक्ष्य से...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह स्वलक्ष्य चूककर शास्त्र कान में पड़े, पढ़े तो उसे ऐसा हो जाता है कि इससे यह ज्ञान हुआ। ज्ञान की पर्याय तो अपने से होती है, भले वह परलक्ष्यी हो, वह अपने से होती है परन्तु शास्त्र से (ज्ञान) हुआ, शब्द से हुआ... आहाहा! यह शब्दज्ञान हुआ। शास्त्र का ज्ञान, वह शब्दज्ञान है। उस शब्दज्ञान से मुझमें ज्ञानपर्याय हुई (ऐसा लगता है वह) भ्रम है। आहाहा! गजब बात है! समयसार (का) एक-एक पद! एक-एक गाथा!! आहाहा! धीर का काम है भाई! यह कहीं उतावल से आम पक जाये — ऐसा नहीं है। आहा!

निकटता के कारण.... ज्ञेय-ज्ञायक.... जैसा ज्ञेय है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है तो ऐसी निकटता के कारण उस ज्ञेय से मुझमें ज्ञान हुआ — ऐसा भ्रम छोड़ दे। आहाहा! ऐसा मार्ग! **अपने अनुभव के साथ परस्पर....** परस्पर, देखा, क्या कहा? यह ज्ञेय और जाननेवाला (ज्ञायक) दोनों परस्पर एक हो गये हों, ज्ञेय यहाँ आ गया और ज्ञान की पर्याय उसमें घुस गयी? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् भगवान के पास गये थे। तीर्थंकर भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे, (वहाँ से) आकर यह शास्त्र बनाया है। आहाहा! उस वाणी का क्या कहना! तथापि यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि वाणी से तुझे ज्ञान हो, आहाहा! तो ज्ञेय से ज्ञान हुआ, ज्ञान से ज्ञान न हुआ... बहुत भ्रम, बापू! सत् को पहुँच जाना, वह अलौकिक बात है भाई! आहाहा! **एक जैसी हुई दिखायी देती हैं....** परस्पर, हों! भगवान, भगवान की वाणी और ज्ञायक दोनों ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण के कारण अति निकटता से मानो उससे मुझमें, (ज्ञान) हुआ और मेरा ज्ञान वहाँ — उसके पास चला गया; इसलिए ज्ञान हुआ (ऐसा भ्रम होता है।) आहाहा! अब ऐसा उपदेश अनजान लोगों को तो ऐसा लगता है, यह क्या कहते हैं? बापू! तेरा मार्ग वह अलौकिक है, भाई! आहाहा!

आया न? **भावेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये हुए,....** क्या कहते हैं? **भावेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये हुए,....** आहाहा! ज्ञान के क्षयोपशम की पर्याय द्वारा ग्रहण किया। वाणी, भगवान, मन्दिर या प्रतिमा, आहाहा! भावेन्द्रिय द्वारा, ज्ञायक द्वारा नहीं। आहाहा! **ग्रहण किये हुए, इन्द्रियों के विषयभूत....** इन्द्रियों के विषय — रंग, गंध, रस और

स्पर्श, भगवान की वाणी और भगवान, यह सब इन्द्रिय के विषय हैं। अरेरे! ऐसी बातें! **भावेन्द्रियों के द्वारा....** आहाहा! **ग्रहण किये हुए,....** ग्रहण अर्थात् जानने में आये हुए। **इन्द्रियों के विषयभूत स्पर्शादि पदार्थों....** आहाहा! भावेन्द्रियों द्वारा स्पर्श जानने में आया, रंग जानने में आया, गन्ध जानने में आयी, शब्द जानने में आया। आहाहा! **अपनी चैतन्यशक्ति की....** आहाहा! अपनी चैतन्यशक्ति से-स्वभाव का स्वयमेव अनुभव में आनेवाला। यह भावेन्द्रिय द्वारा जानने में आया, वह नहीं; ज्ञान के क्षयोपशम की पर्याय में, आहाहा! शास्त्र जानने में आया, वह नहीं। आहाहा! अपना चैतन्यस्वभाव स्वयंमेव अनुभव में आया। वह तो कोई निमित्त है तो जानने में आया — ऐसी चीज है नहीं। अपना चैतन्यस्वरूप भगवान स्वयंमेव... आहाहा! **स्वयमेव अनुभव में आनेवाली....** कौन? **असंगता के द्वारा....** ज्ञेय के संग बिना-ज्ञेय के संग के सम्बन्ध बिना, आहाहा! देव, गुरु और शास्त्र जो ज्ञेय हैं, उनके सम्बन्ध बिना भगवान असंग प्रभु अन्दर है। आहाहा! क्या टीका! आहाहा!

अपनी चैतन्यशक्ति की स्वयमेव अनुभव में आनेवाली.... आहाहा! इन्द्रियों से सुनने से नहीं। आहाहा! चैतन्य प्रवाह भगवान ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... नित्यानन्द प्रभु, आहाहा! ऐसे चैतन्यस्वभाव का स्वयंमेव अनुभव में आनेवाला। भावेन्द्रिय और निमित्त जाना, उसके द्वारा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

श्रोता : स्वयमेव अर्थात् काललब्धि आ गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ज्ञायकभाव स्वयंमेव जाननेवाला; निमित्त की अपेक्षा से नहीं, भावेन्द्रिय की अपेक्षा से नहीं।

श्रोता : काललब्धि की अपेक्षा आती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : काललब्धि नहीं, वह तो पुरुषार्थ से; तब काललब्धि कहते हैं। अपने पुरुषार्थ से जब भिन्न भान किया, तब काललब्धि पक गयी।

यह प्रश्न तो हमारे (संवत्) ७२ की साल में आया था। ७२-७२ कितने वर्ष हुए? ६२ - ६० और २। सम्प्रदाय में प्रश्न खड़ा था। ७० में दीक्षा, ६२ वर्ष हुए, तो पीछे ७२ में एक प्रश्न खड़ा हुआ, वे ऐसा कहने लगे.... हमारे गुरु तो भद्र थे परन्तु हमारे गुरुभाई

जरा बहुत... ऐसा कहते थे 'केवली ने देखा, वैसा होगा हम क्या करें ?' पाटनीजी ! ७२-७२ में अर्थात् ६२ वर्ष पहले, बहुत प्रश्न चला। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा देखा, वैसा होगा, हम क्या करें ? सुनो ! सर्वज्ञ जगत में हैं ? यह ज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को देखती है — ऐसी सर्वज्ञ की पर्याय जगत् में सत्तारूप है, उसका स्वीकार है ? फिर देखा (वैसा) होगा। सुमेरुचन्द ! यह तो अन्दर से आया था, तब तो कुछ नहीं था। आहाहा ! प्रवचनसार की ८० गाथा है न, **'जो जाणदि अरहंतं द्रव्यत्त गुणत्तपज्ज्य त्तेहिं'** यह अन्दर से आया था, पढ़ा नहीं था। आहाहा ! भाई ! तुम ऐसा कहते हो, मैं तो ऐसा कहता हूँ कि सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा — तो सर्वज्ञ की सत्ता का स्वीकार है ? अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञ का स्वीकार है ? यह सर्वज्ञ का स्वीकार अल्पज्ञ में कैसे आयेगा ? आहाहा !

यह अपने सर्वज्ञस्वभाव सन्मुख होगा। भगवान आत्मा का सर्वज्ञ स्वभाव है, उसके सन्मुख होगा। सर्वज्ञ, उस समय इतना नहीं था; ज्ञान अन्दर होगा — ऐसा कहा (संवत्) ७२ की बात है। ज्ञान में अन्दर गये, घुस गया, सर्वज्ञ की पर्याय का निर्णय करने में आया तो सम्यग्दर्शन हुआ। अपनी पर्याय में सर्वज्ञस्वभाव आया नहीं परन्तु सर्वज्ञस्वभाव जगत में प्रगट है तो वह सर्वज्ञस्वभाव आया कहाँ है ? सर्वज्ञस्वभावी भगवान है, उसमें से आता है। उस सर्वज्ञस्वभाव का जिसको निर्णय हुआ, वह पुरुषार्थ है। यह बात है भाई ! आहाहा ! कहा — ऐसा नहीं चलता। आहाहा ! भाई, मैं इसमें आ गया हूँ, इसलिए ऐसा मानूँ — ऐसा नहीं है। मैं तो सत् क्या है ? आहाहा ! निश्चय की बात हुई। व्यवहार की बात भी ऐसी थी। हम तो उसमें मुँहपट्टी में थे न, तब सेठ दस लाख (रुपयेवाला) था। साठ वर्ष पहले। वह स्थानकवासी था। मूर्ति को नहीं माने तो ऐसा कहता था कि मूर्ति की पूजा तब तक हो, जब तक मिथ्यादृष्टि हो तब तक — ऐसा कहता था। मैंने कहा — सुनो ! जिनप्रतिमा की पूजा का भाव, भावश्रुतज्ञानी को ही आता है, क्योंकि जब आत्मा का ज्ञान हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, भावश्रुतज्ञान हुआ तो भावश्रुतज्ञान का भेद निश्चय और व्यवहार दो नय हैं तो व्यवहारनय उसको आता है और व्यवहारनय का विषय भगवान की प्रतिमा व्यवहार है। है तो व्यवहार परन्तु व्यवहार उसको आता है। समझ में आया ?

निश्चय से अपने स्वरूप का निर्णय करे, तब सर्वज्ञ का निर्णय होता है और मूर्ति की पूजा भी, सर्वज्ञस्वभाव का अनुभव — निर्णय हुआ तो सम्यग्ज्ञान हुआ, तो श्रुतज्ञान हुआ भाव (श्रुत) । भावश्रुतज्ञान का भेद नय-निश्चय और व्यवहार; अत: उसको व्यवहारनय है और निक्षेप, ज्ञेय का भेद है, यह नय का भेद है । नय है विषयी और वह विषय । अत: समकिती को ही निश्चय से व्यवहार का विकल्प-भक्ति का आता है । न्याय समझ में आया ? है तो व्यवहार । भावश्रुतज्ञानी को ही वह ऐसा विकल्प आता है । नय-व्यवहारनय का विषय और इसका विषय ध्येय-भगवान है, व्यवहार है शुभभाव है । निश्चय और व्यवहार इस प्रकार सिद्ध होता है । समझ में आया ? आहाहा !

चैतन्यशक्ति की स्वयमेव अनुभव में आनेवाली असंगता के द्वारा.... आहाहा ! जिसको ज्ञेय का संग नहीं, भावेन्द्रिय का संग नहीं, आहाहा ! ऐसे असंगप्रभु के आश्रय द्वारा **सर्वथा अपने से अलग किया;....** यह ज्ञेय — चाहे तो देव-गुरु और शास्त्र हो परन्तु असंग ऐसे अपने आत्मा के भान से भिन्न है । कहो.... शिवलालभाई ! इनके पिता का प्रश्न था, १० के साल (संवत् २०१० के साल) ! शिवलालभाई बोटादवाले । वे कहते बोटाद व्याख्यान करते थे, १० की साल, २४ वर्ष हुए, बोटाद में व्याख्यान करते थे, हजारों लोग थे, तो उसने कहा कि देव, गुरु और शास्त्र पर ? शुद्ध हैं वे पर ? लाख बार पर । परद्रव्य है, स्वद्रव्य नहीं । समझ में आया ? आहाहा ! परद्रव्य का लक्ष्य करने से शुभराग ही होगा; वहाँ से वीतरागता नहीं होगी । आहाहा !

वीतरागता तो त्रिकाली नाथ प्रभु वीतरागस्वरूपी बिम्ब अन्दर है, उसके आश्रय से वीतरागता होगी । हीराभाई ! ऐसा है । आहाहा !

असंगता के द्वारा.... आहाहा ! चैतन्य भगवान-चैतन्यस्वभाव, वह असंग है । जिसे एक समय की पर्याय का ही संग नहीं, आहाहा ! तो देव, गुरु, और शास्त्र - परज्ञेय का भी संग नहीं — ऐसी असंगता के द्वारा **सर्वथा अपने से अलग किया;....** ज्ञेय को भिन्न किया । वह ज्ञेय अपने में नहीं; ज्ञेय से अपने में लाभ नहीं और ज्ञेय में मैं नहीं । आहाहा ! ऐसी बात ! सुनने मिलना कठिन पड़ता है । थोड़ा-बहुत जाना और फिर मान लेता है कि हमने यह जाना, बापू ! यह मार्ग कोई अलौकिक है । आहाहा !

सो यह इन्द्रियों के विषयभूत.... इन्द्रिय के विषय। **पदार्थों का जीतना हुआ।....** तीन बोल हो गये। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और पदार्थ... आहाहा!....

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)